आँखों की कोर से माँ हाथी ने बाघ को देखा। चील के झपट्टे की तरह तेज़ी से चिंघाड़ती हुई वह बाघ के पीछे दौड़ी। गड्ढे में उसका बच्चा पड़ा रहा। अचानक जंगल को कँपाने वाली भयंकर आवाज़ हुई। बाघ के पंजे से बच्चे को छुड़ाकर हथिनी ने उसे अपनी सूँड़ में लपेटा। फिर उसे मुखिया की औरत की गोद में रखने के बाद चुपचाप खड़ी रही। कम्बल में लिपटे होने की वजह से बच्चे को एक खरोंच तक नहीं आई थी।

अपने बच्चे को चीखता-चिल्लाता छोड़कर, वह औरत ताबड़-तोड़ गड्ढे के ऊपर से झाड़ियों, कटीले पत्तों-डालों को हटाने लगी। फिर वह धीरे-से गड्ढे के किनारे-किनारे पैर जमाते हुए नीचे उतर गई। हाथी के बच्चे को कोई खास चोट नहीं आई थी। पर, वह डरा-सहमा हुआ था। अब उसे ऊपर उठाने की समस्या थी। वह औरत फिर से ऊपर निकल आई और पेड़ की दो डालों को आड़ा-तिरछा कर गड्ढे में डाल दिया। इससे एक सीढ़ी जैसी तैयार हो गई थी। औरत गड्ढे में उतरकर बच्चे को धीरे-धीरे डाल के सहारे ऊपर उठाने लगी। उसे कई जगहों पर जख्म भी हो गए थे। पर उसने दम साधकर किसी तरह बच्चे को ऊपर की तरफ ठेला। ऊपर से हथिनी ने अपने बच्चे को सूँड़ से लपेटकर खींचा। बच्चा ऊपर आ गया।

तब तक भोर हो चुकी थी। हाथियों के दल को भगाकर मुखिया जब घर लौटा तो बाघ के पाँवों को देखकर दंग रह गया। उसे समझने देर नहीं लगी। डोरी, रस्सा, कुदाल, बर्छा और कई आदमियों को साथ लेकर वह जंगल में घुसा। जंगल में पहुँचते ही वहाँ का नज़ारा देखा वे दंग रह गए। हाथी का बच्चा अपनी माँ का दूध पी रहा था, और पास बैठी उसकी पत्नी अपने बच्चे को दूध पिला रही थी। हाथ के औज़ार, रस्सा सब फेंककर गाँव के लोगों ने हाथ जोड़कर जंगल के देवता को प्रणाम किया।

मुखिया की पत्नी बच्चे को गोद में लेकर खड़ी हुई। हथिनी अपने बच्चे के साथ जंगल की तरफ चली गई। मुखिया ने सभी गड्ढों को भर देने का आदेश दिया। सौदागर को हमेशा के लिए गाँव से भगा दिया गया। इसके बाद कभी भी किसी ने हाथी पकड़ने की कोशिश नहीं की।

तभी से हर साल जाड़े के दिनों में खेत में फसल पकने पर हाथियों को नैवेद्य दिया जाने लगा।

कथा साभारः श्रेष्ठ बाल कहानियाँ

सुनना आवाज़ों के आगे-पीछे

चित्र : दिलीप चिंचालकर

प्रयाग शुक्ल

कुछ जीव-जन्तु अपने आने-जाने की कोई आहट नहीं होने देते, न ही वे बोलते हैं – जैसे चींटे-चींटियाँ या तितलियाँ। चींटा/चींटी काट लें तो हम उनकी ओर चौंककर देखते हैं, या उन्हें तब देखते हैं, जब वे अचानक ही आँखों के सामने आ जाएँ। तितली भी अचानक ही दिखती है और हम पहचानते हैं कि "यह तितली है।" इसी तरह कई चीज़ें भी ऐसी होती हैं, जो बोलती नहीं हैं, बस दिखती हैं। जैसे अगर हमारी जेब से गिर जाए तो भी हमें पता नहीं चलता कि रुमाल गिर गया है। बाद में पता चलता है कि वह गिर गया है या खो गया है। इसी तरह फूल भी चुपचाप झर जाते हैं और हम उनके झर जाने की कोई आवाज़ नहीं सुन पाते। अँधेरे में भी उनका होना हम दूर से ही "जान" लेते हैं, अगर उनमें सुगन्ध हो। मानो सुगन्ध ही उनकी आवाज़ हो। आहट हो। इसी तरह कागज़ का कोई छोटा टुकड़ा, या गुब्बारा भी कोई आवाज़ नहीं करते। हाँ, गुब्बारा जब "फट" जाता है, तो उसके फटने की आवाज़ बता देती है कि वह फट गया। आवाज़ सचमुच बड़ी चीज़ हैः वह मीठी हो तो अच्छी लगती है, जैसे कोयल की बोली। कोई-कोई आवाज़ ऐसी भी होती है कि वह सुनने में बहुत अच्छी भले न लगे, और कानों में शोर भी दे, तो भी वह अपनी ओर खींच लेती है – जैसे बादलों के गरजने की आवाज़, या आँधी की आवाज़।

बारिश के दिनों में बादलों के आने का मतलब है – पानी बरसेगा। और उनके गरजने की आवाज़, उनकी गड़गड़ाहट भली मालूम पड़ती है। आँधी की आवाज़ सावधान कर देती है कि बन्द कर लो, खिड़की-दरवाज़े, उतार लो तार पर सूखते कपड़े, नहीं तो वे उड़ जाएँगे। मेंढक "टर्र-टर्र" करते हैं और कई बार उनकी आवाज़ बहुत परेशान भी करती है, पर, यह सोचकर अच्छा भी लगता है कि वे भरपूर वर्षा से खुश हैं। और उनका संसार अब खुद उन्हें अच्छा लग रहा है। तुलसीदास ने लिखा हैः "दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई, वर्षा विगत शरत ऋतु आई।" हाँ, ध्वनियाँ खुशी और दुख दोनों बताती हैं – कई बार। कुत्ता या बिल्ली रोते हैं तो हम बेचैन हो जाते हैं। कोई छोटा बच्चा रोने लगता है, तो भी हम परेशान हो जाते हैं। पर, कहीं से हँसी सुनाई पड़े – भले ही हँसने वाले का चेहरा हमें न दिखाई पड़ रहा हो – तो भी हम खुश हो जाते हैं।

दूर से आती ढोलक की आवाज़ भी हमें खुश करती है। सचमुच आवाज़ों का संसार बहुत बड़ा है। वे न हों तो हमें बहुत "अकेला-अकेला" लगे। तभी हम उन्हें बहुत बार पूरे ध्यान से, कान लगाकर सुनते हैंः रातों को बूँदों के टपकने की आवाज़ हो या हवा के पेड़ों पर सरसराने की आवाज़ या तार पर सूखते कपड़ों के फरफराने की आवाज़, हमें अच्छी लगती है। "आवाज़" एक सूचना भी है – कोई दरवाज़ा खटखटाता है, या दरवाज़े की घण्टी बजती है तो हम जान लेते हैं कि कोई आया है। इसी तरह किसी के सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरने की आहट से भी पता चलता है कि "कोई है"। साइकिल की घण्टी सुनकर आगे चल रहा व्यक्ति, रास्ता छोड़ देता है। सिनेमा और नाटक में तो कई बार आवाज़ों को "देखा" ही इसलिए जाता है कि वही बहुत कुछ दिखा और बता दें।

कान लगाकर सुनना सचमुच एक बड़ी ज़रूरी और अच्छी चीज़ है। जब हम ध्यान से सुनते हैं तो चीज़ों को याद भी रख पाते हैं। सुनने का महत्व वहाँ भी है, जहाँ आवाज़ न हो। तभी तो किसी अच्छे चित्र या फोटोग्राफ के बारे में कहा जाता है कि "यह बोलती हुई तस्वीर है।" मतलब वह कुछ कह रही है, उसे सुनो, गौर से देखो भी।

सोचो ज़रा, अगर सुबह-सुबह चिड़ियों की बोली न सुनाई पड़े, बर्तनों के धुलने और रखे जाने, और कुछ पकाए जाने पर आवाज़ें न आएँ, तो कैसा लगेगा। कहीं बच्चे हॉकी खेल रहे हों, आवाज़ें आ रही हों, तो उस ओर भागने का मन हो आता है न! सुनो-सुनो जब तुम यह पढ़ रहे हो, तब भी तुम्हारे आसपास कोई आवाज़ है जो कुछ कह रही है। उसके कहने व सुनने के साथ उसे देखने का भी अपना मज़ा है! तुम एक कमरे में हो और टी.वी. दूसरे कमरे में। अगर सचिन खेल रहा है और स्टेडियम गूँज उठा है तो जान लें उसने चौका या छक्का जड़ दिया है!

कुछ आवाज़ें ऐसी भी होती हैं, जो बस ज़रा-सा "सरकती-सी" या "फुसफुसाती" हुई होती हैं, जैसे साँप के रेंगने की, या गिलहरी के दूब-घास पर दौड़ने की या डाली पर चलने की या पानी की हल्की-सी कल-कल की, नदी में नाव के बढ़ने की – तुम ऐसी कितनी ही आवाज़ों को याद कर सकते हो, उन्हें सुनते हुए अपने सामने एक पूरा दृश्य खड़ा कर सकते हो कल्पना में।